सात्रिया

१५वीं शताब्दी में संत शंकरदेव ने वैष्णव धर्म के प्रचार हेतु इस नृत्य शैली का प्रचलन किया था।

इस नृत्य को यह नाम 'सत्रों' (सत्र) के नाम से विख्यात वैष्णव मठों से मिला, जहां इसे सदियों से पोषित और संरक्षित किया गया था।

तत्पश्चात, यह नृत्य शैली दो पृथक धाराओं में विकसित हुई: गायन-बायनार नाच तथा खरमानार नाच।

प्रमुख विशेषताएं

इस नृत्य शैली को नृत्य पर लिखे गए विभिन्न ग्रंथों तथा असम में प्रचलित प्रमुख लोक नृत्यों विशेषतः ओजा पल्लि तथा देवदासी के भिन्न-भिन्न घटकों का संयोजन कर प्रचलन में लाया गया था।

परम्परागत हस्त-मुद्राओं, पद-क्रियाओं, आहार्य संगीत इत्यादि से संबंधित सिद्धांतों का कठोरता से पालन किया जाता है।

यह शैली लास्य और तांडव दोनों तत्वों का संयोजन करती है तथा लयबद्ध शब्दों और नृत्य मुद्राओं पर भी बल देती है।

इस नृत्य को सामान्यतया पुरुष भिक्षुओं द्वारा अपने दैनिक अनुष्ठानों के रूप में किया जाता है। इन पुरुष भिक्षुओं को 'भोकोट' कहा जाता है।

खोल (ढोल), ताल (करताल) तथा बांसुरी इस नृत्य शैली में प्रयुक्त होने वाले प्रमुख संगीत वाद्ययंत्र हैं।

वेशभूषा आमतौर पर असम में उत्पादित पट (चंज) रेशम से बनती है। यह मलबरी पौधे से प्राप्त होता है तथा जटिल स्थानीय रूपांकनों के साथ बुना जाता है।

इस हेतु शंकरदेव द्वारा रचित गीतों को 'बोरगीत' कहते हैं।

VISIONIAS
INSPIRING INNOVATION